2

आरोहण

पर्वतारोहण अब पाठ्यचर्या का अंश बन गया है। यह शिक्षा के पाठ्यक्रमों में स्थान पा चुका है। इसकी पढ़ाई-लिखाई कर लोग जीविकोपार्जन से जुड़ रहे हैं। गरमियों के दिनों में स्कूलों, कालेजों, विश्वविद्यालयों से लोग पर्वतारोहण के लिए पर्वतीय प्रदेशों की यात्रा करते हैं। प्रायः पर्वतीय प्रदेश के रहनेवाले ही इसके लिए कोच का काम करते हैं। वे बेहतर तरीके से गाइड कर सकते हैं क्योंकि पर्वतारोहण उनकी दिनचर्या है। पर्वतारोहण के क्षेत्र में बछेंद्री पाल और संतोष यादव का नाम इतिहास में दर्ज हो चुका है।

'आरोहण' कहानी में लेखक ने पर्वतारोहण की ज़रूरत और वर्तमान समय में उसकी उपयोगिता को रेखांकित किया है। पर्वतीय प्रदेश के रहनेवालों के जीवन संघर्ष तथा प्राकृतिक परिवेश से उनके संबंधों को चित्रित किया है। किस तरह पर्वतीय प्रदेशों में प्राकृतिक आपदा, भूस्खलन, पत्थरों के खिसकने से पूरा जीवन तथा समाज नष्ट हो जाता है, आरोहण उसका जीवंत उदाहरण प्रस्तुत करता है। आरोहण पहाड़ी लोगों की जीवनचर्या का भाग है, किंतु उन्हें आश्चर्य तब होता है जब यह पता चलता है कि वही आरोहण किसी को नौकरी भी दिला सकता है। इस कहानी के माध्यम से लेखक ने पर्वतीय प्रदेश की बारीकियों, उनके जीवन के सूक्ष्म अनुभवों, परंपराओं, रीति-रिवाजों, उनके संघर्षों, यातनाओं को संजीदगी के साथ रचा है। मैदानी इलाकों की तुलना में पर्वतीय प्रदेशों की ज़िंदगी कितनी कठिन, जटिल, दुखद और संघर्षमय होती है, उसका विशद विवरण यह कहानी प्रस्तुत करती है।

संजीव की भाषा शैली रोचक है। आंचलिक शब्दों, वाक्यों और पर्वतीय प्रदेश की बोलियों के जो शब्द एवं मुहावरे इस पाठ में आए हैं वे कथानक को बाँधने में सफल हुए हैं। पाठक का ध्यान भी उन्हीं प्रसंगों की ओर बार-बार जाता है, जिनमें लोकभाषा प्रमुख है। कहानी में ये शब्द संरचनात्मक भूमिका में हैं, इनसे कहानी को पढ़ने-समझने में मदद मिलती है।

संजीव

आरोहण

बस उन्हें देवकुंड के स्टॉप पर उतारकर आगे बढ़ गई, तो रूप सिंह की नज़र सबसे पहले अपने गाँव की ओर उठ गई...पूरे ग्यारह साल बाद लौट रहा था वह अपने गाँव माही।

एक अजीब किस्म की लाज, अपनत्व और झिझक उसे घेरने लगी थी। कोई उससे पूछे कि वह इत्ते साल कहाँ रहा या कि इत्ते सालों बाद लौटकर आया ही क्यों, तो वह क्या जवाब देगा! कोई खतों-किताबत भी नहीं। पता नहीं कौन कहाँ हो, कौन कहाँ! ग्यारह साल कम भी तो नहीं होते।

एक दिक्कत और थी। ग्यारह साल बाद भी कोई मुकम्मिल सड़क न बन पाई थी माही के लिए। अकेले जाना होता, तो अपने गाँव के लिए क्या सड़क और क्या पगडंडी! मगर साथ कोई

और हो तो सोचना पड़ता है कि अगला क्या सोचेगा! फिर साथ वाला भी कोई ऐसा-वैसा नहीं, शेखर कपूर था। एक तो उसके गॉड फ़ादर कपूर साहब का लड़का, दूसरे आई.ए.एस. ट्रेनी! अब ऐसे खासमखास मेहमान को पैदल पाँव अपने गाँव लिवा जाना अपनी और अपने गाँव की तौहीन कराना ही तो हुआ न!

शेखर अपने बाइनोक्यूलर से पहाड़ों और घाटियों को देखने में रमा हुआ था, मगर रूप...? आँखें बंद करके भी वह पंद्रह किलोमीटर और ग्यारह साल की दूरी से देख सकता था अपने गाँव को। यह दीगर बात थी कि उसके और माही के बीच अभी कई पहाड़, कई नदियाँ और कई घाटियाँ थीं।

उसने अपने सामने किसी विशाल डायनासॉर की तरह पसरे पहाड़ को देखा। फिर उसके पीछे की ज़र्द परतों को, जिन पर बादल और धुंध की फफूँदियाँ जड़ी हुई थीं। उसके हिसाब से अभी वह छह हज़ार फ़ीट की ऊँचाई पर था और यहाँ से पंद्रह किलोमीटर चलकर दस हज़ार फ़ीट की ऊँचाई पर पहुँचना था उसे। उसने कलाई पर बँधी अपनी इंपोर्टेड घड़ी पर नज़र गड़ाई। अभी सुबह के दस बजे थे। मगर पैदल चलना हो, तो शाम तो होनी ही होनी है।

चाय का गिलास थामते हुए उसने आसपास एक उड़ती-सी नज़र डाली और चायवाले से पूछा, "यहाँ कोई घोड़ा-वोड़ा नहीं मिलता क्या?"

"आप कने जाणा छावाँ (आपको कहाँ जाना है)?"

"माही! सरगी से पहले का गाँव!"

चायवाला अपना सिर खुजलाने लगा। फिर जैसे खुद से दरियाफ़्त करने लगा, "ह्याँ से डाक बँगला और मशरूम सेंटर तक तो जाते हैं, लेकिन माही...!" तभी जैसे कुछ याद आया उसे। उसने आगे बढ़कर गुमसुम-से बैठे नौ-दस साल के एक लड़के को पुकारा, "ओय महीप-ऽ! तूई वकी जाणा छू (तू वहाँ जाएगा)? अरे माही।"

लड़के ने, जो किसी बुज़ुर्ग की तरह पत्थर की सीढ़ियों पर अकेला बैठा हुआ था, अपनी उदासीन-सी गरदन फेरी, मगर कुछ बोला नहीं। उड़े हुए नीले रंग की पहाड़ी पतलून और सलेटी स्वेटर में समेटी अपनी तमाम गंभीरता के बावजूद अपने सुंदर गोरे चेहरे की मासूमियत को अभी झटक नहीं पाया था वह। "ये जा सकेगा भला?" शेखर ने अपना संदेह प्रकट किया। "जाएगा साब! कैसे नहीं जाएगा? यहाँ सवारियाँ मिलतीई कहाँ हैं! आप लोग चले गए, तो बैठ के मक्खीई तो मारणा है। घाट बटी झगड़ा करी के पइसा कमाणा के वास्तेई तो आई छों।"

चायवाले का अनुमान सही था। लड़का वहाँ से चुपचाप उठकर चला गया, मगर थोड़ी ही देर में दो घोड़ों के साथ चढ़ाई चढ़ता हुआ आता दिखा। मेहनताना चायवाले ने ही तय कर दिया था—दो घोड़ों के सौ रुपये।

चल पड़े वे–एक घोड़े पर शेखर, दूसरे पर रूप। महीप शेखर वाले घोड़े के साथ आगे-आगे पैदल चल रहा था। पहले पहाड़ तक रास्ता ठीक-ठाक था, मगर उससे उतरते ही धूप का उजला चंदोव जहाँ-तहाँ दरकने लगा था। धूप की सुनहरी पट्टियों के बीच छाया की स्याह पट्टियाँ, मानो धारीदार खालोंवाला वह विशाल जानवर बैठकर पगुरा रहा था। पता नहीं, कौन किसका पैबंद था, उजाला अँधेरे का या अँधेरा उजाले का?

चढ़ाइयाँ और ढलानें! बीच-बीच में जहाँ-तहाँ उगे छोटे-छोटे घरौंदे, जैसे मशरूम सेंटर के कुकुरमुत्तों की फसल दूर तक छिटक गई हो।

सामने के पहाड़ों पर बादलों के पँख लग गए थे, जो झर-झरकर उनके अगल-बगल उड़ रहे थे। नीचे घास, लताएँ और पेड़ों की कहीं फीकी, तो कहीं चटक हरियाली समेटे पहाड़ कहीं कच्चे, कहीं पक्के! नीचे कोई नदी बह रही थी, शायद सूपिन! शाप की मारी अभागिन सूपिन! घाटी से किसी अदृश्य नारी-कंठ का कोई गीत उमड़ रहा था, पतला दर्दीला सुर–

"ऊँची-नीची डांडियों मा,
हे कुहेड़ी ना लाग तूँ–ऽऽऽ!"

वे पहाड़ के नीचे नदी के बगल के पथरीले रास्ते पर चले जा रहे थे। घोड़ों के खुरों से खट-खट, खर्र-खर्र के अस्फुट ताल के ऊपर फैलता-सा वह गीत, जैसे कोई रंग पसर रहा हो धीरे-धीरे!

"ऊँचे-नीचे पाँखों मा,
हे घसेरी ना जाय तूँ ऽऽऽ?"

गीत जैसे जीवन और मृत्यु, इस लोक और उस लोक से परे किसी अलग ही अमूर्त लोक से उड़ रहा था।

"ऊँची-नीची डांडियों मा
हे हिलांस ना बास तूँ ऽऽऽ!"

"इसका मतलब क्या हुआ यार?" शेखर ने पीछे मुड़कर रूप से सवाल किया।

"मतलब? मतलब...कुहरे से सवाल कर रही है, कोई घास गढ़नेवाली पहाड़ी लड़की कि ए कुहरे, ऊँची-नीची पहाड़ियों में तुम न लगो जाकर। इस पर कुहरा घासवाली लड़की से कहता है कि ऊँची-नीची पहाड़ियों में तू न जाया कर। इसी तरह वह हिलांस नाम के परिंदे को भी आगाह करता है कि ऊँची-नीची पहाड़ियों में अपना बसेरा न बनाया करे।"

"मगर तेरी आवाज़ भर्रा क्यों गई बताते-बताते?" शेखर ने पीछे मुड़कर ताका।

"यह एक दर्द की टेर है, शेखर साहब...! आपने वो गीत सुना होगा, बहोत पुराना गीत...
छुप गया कोई रे दूर से पुकार के..."

"दर्द अनोखे हाय दे गया प्यार के!" शेखर ने गीत पूरा किया।

"हाँ! वही! ये ठीक है कि मैंने कोई बसेरा नहीं बनाया यहाँ, उड़ गया, मगर बाबा और भूप दादा ने तो...कुहासे का होना क्या मायने रखता है इन पहाड़ों में, इसे तो कोई पहाड़ी ही समझ सकता है। रिश्ते तक धुँधला जाते हैं साहब। नेह के नाते तक नज़र नहीं आते। पास में कोई अपना खड़ा है और उसे आप देख तक नहीं पाते, पहचान तक नहीं पाते।"

थोड़ी देर तक कोई कुछ न बोला। सिवाय खुरों की आवाज़ों और गीत की धीमी पड़ती लय के, जिसकी हिलकोरों में अग-जग डूब-उतरा रहा था, सारी ध्वनियाँ सो गई थीं।

कुछ देर बाद अचानक चलते-चलते ठमक गया रूप, "यहीं इसी जगह मैंने धकेला था भूप दादा को।"

"धकेला था....? क्यों?" शेखर भी रुक गया।

"वो, मैं भाग गया था घर से देवकुंड। भूप दादा मुझे खोजते हुए आए और मैं पकड़ा गया। कहीं मैं फिर भाग न जाऊँ, सो लौटते वक्त मेरी कलाई पकड़ रखी थी उन्होंने। उनसे छुटकारा पाने को मुझे कुछ न सूझा, तो मैंने धक्का दे दिया उन्हें–यहाँ, इसी जगह! वे सँभल न सके, फिसल गए। मेरा हाथ उनके हाथ में था सो मैं भी खिंच गया। इस ढलान पर हम दोनों ही लुढ़कने लगे। नीचे एक पेड़ था। अब नहीं है, उसने जैसे थाम लिया हम दोनों को। पेड़ के इस तरफ़ भूप, उस तरफ़ मैं, झूलने लगे हम दोनों, बीच में थे हमारे हाथ। बहोऽऽऽत सख्त जान थे भूप दादा। बहोऽऽऽ मज़बूत पकड़ थी उनकी, मगर वे ऊपर से जितनी सख्त जान थे, अंदर से उतने ही नरम। उन्होंने समझा कि वे यूँ ही अपनी गफ़लत से फिसले थे, खुद को कसूरवार भी समझ रहे थे कि अगर उन्होंने मेरा हाथ छोड़ रखा होता, तो शायद मैं गिरने से बच जाता। खैर, जैसे-तैसे हमें खींचकर ऊपर ले आए और हाथ छोड़ दिया।

'ज्यादा चोट तो नहीं लगी, भुइला?' उन्होंने अनुतप्त भाव से पूछा। वे खीझभरी हँसी हँस रहे थे और मेरे बदन को परख रहे थे। पत्ते निचोड़कर उन्होंने मेरी और अपनी खरोंचों पर लगाया। ये दाग अभी भी रह गए हैं।" रूप ने बाँहों की ओर इशारा किया, "उन्होंने उस दिन से जो हाथ छोड़ा कि फिर नहीं पकड़ा!"

महीप रुककर उन्हें देखता रहा, मगर उसने घोड़ों को हाँका नहीं। रूप ने खुद ही एड़ लगाई, तो चल पड़ा घोड़ा, "बाप रे, ओह कैसे चढ़ी थी चढ़ाई हमने उस दिन, क्या बताएँ! पूरे आधे घंटे लग गए हमें ऊपर आने में।"

"अगर उस वक्त रॉक क्लाइंबिंग जानते होते, तो इतनी मुश्किल न आती।" बच्चे की तरह बोल उठा था शेखर। "वो सारी ट्रेनिंग तो आपके पापा की मेहरबानी है। मैं आज जितनी ऊँचाई तक जा सका हूँ, उस सबका...मगर उनसे मुलाकात तो इस वाकये के सालभर बाद हुई।"

"अच्छा मान लो, आज तुम्हें इस पर चढ़ना होता, तो कैसे चढ़ते?"

रूप ने एक उस्तादाना उड़ती हुई नज़र से पीछे मुड़कर देखा, फिर कहा, "पहले आप बताइए, देखें कितना जान पाए हैं आप!"

पर्वतारोहण का प्रसंग छिड़ जाने के बाद न रूप को बाकी किसी चीज़ की सुधि रह जाती थी, न शेखर को और यह आरोहण ही दोनों को एक सूत्र में जोड़े हुए था। "मैं...?" शेखर ने नीचे देखे बिना ही 'ऊँऽऽऽ! ऊँऽऽऽ' 'हाँ' करते हुए प्रशिक्षार्थी की तरह सैद्धांतिक बातों को याद किया, "सबसे पहले तो कोई दरार तलाशते फिर रॉक पिटन लगाते।"

"यहाँ...? खैर, चलिए मान लिया, मगर अगर दरार न मिली, तो...?"

"तो ड्रिल करके लगाएँगे।"

बुज़ुर्ग की तरह मुसकराया रूप, "खैर, आगे?"

"रॉक पिटन, फिर ऐंकर, फिर आगे-आगे डिसेंडर नो नो, रोप लैडर-रस्सी की सीढ़ी।"

"नो!" आधिकारिक भाव से रोक दिया रूप ने, "कोई भी चढ़ाई हो, फ़र्स्ट वॉच, देन गार्डेनिंग-चौरस या समतल बनाना, फिर से देखना होगा कि पत्थर किस जाति का है, इग्नियस है, ग्रेनाइट है, मेटामारफ़िक है, सैंड स्टोन है या सिलिका, क्या है! वरना अव्वल तो सपोर्ट नहीं बना पाओगे, बन भी गया, तो फ्रीरैपेलिंग नहीं होगी।"

शेखर ने रूप की परिपक्व बुद्धि पर प्रशंसा में आँखें नचाईं, "यस, यस।"

दोनों आरोही अति उत्साह में थे। आरोहण के दुस्साहसिक अभियानों पर बहस करते-करते उन्हें इतना भी भान न हुआ कि ढलान से उतरकर कब के वे बीच के मैदान में चले आए थे और अब वह मैदान भी दोनों ओर की पर्वत-शृंखलाओं के कसते चले जाने से संकरा होता चला आ रहा था।

"अब तक आपके सामने ईज़ी सवाल थे, अब कुछ मुश्किल सवाल। इस पहाड़ पर चढ़ना हो और इस पहाड़ से उस पहाड़ पर सीधे ऊपर ही ऊपर जाना हो, खयाल रहे, दोनों के बीच सूपिन है-कैसे करेंगे?" रूप की अँगुली पहाड़ों की ओर उठ रही थी।

"एक मिनट, मुझे उतर जाने दो।" शेखर ने घोड़े से उतरकर पहाड़ों पर गरदन उठाई। एक पिरामिडनुमा था, एक तनिक फ़्लैट, जिसकी शृंखला दूर तक नज़र आ रही थी। दोनों ही पर नीचे से काफ़ी ऊपर तक देवदार खड़े थे। जिन्हें मज़ाक-मज़ाक में वह 'पहाड़ के रोएँ' कहा करता था। रूप का इशारा शायद उसके कटे अंश की ओर से चढ़ने का था। लाइम-स्टोन के चक्कर में किसी ने उसके बीच का एक बड़ा भाग कटवा डाला था।

"ये तो लाइम स्टोन है, सीकरी जीन?"

"बस?"

"नहीं ओवर हैंगिंग भी है।"

"हाँ, है, तभी तो टफ़ है, इस पर चढ़कर ऊपर ही ऊपर नदी को क्रॉस करते हुए आपको दूसरे पहाड़ तक जाना है।"

रूप अभी सोच ही रहा था कि महीप ने उकताकर टोक दिया, "साब, जल्दी करो न।"

उन्हें पर्वतारोहण के अध्याय को बंदकर फिर से घोड़े पर सवार होना पड़ा।

नीचे की संकरी नदी से बचते हुए पहाड़ से सटे बेहद संकरे रास्ते से उन्हें चलना पड़ रहा था। शेखर डरकर घोड़े से उतरना चाहता था, मगर महीप ने रोक दिया, "बैठे रहो साब"। अब वह घोड़ों को पुचकारते हुए निर्देश देते हुए चल रहा था, "सँभली के हीरू, सँभली के...ओय वीरू दाएँ चल, दाएँ...अरे ले जाता है नदी मा...दाएँ-दाएँ...सँभली के।" मगर जब सामने भेड़ें आ गईं और भेड़ों के साथ-साथ भोटिया कुत्ता भी, तो उन्हें उतर जाना पड़ा। महीप की चौकन्नी नज़र कुत्ते पर थी, जबकि उन दोनों की कुत्ते के पीछे भेड़ें हाँक रही चौदह-पंद्रह साल की सलोनी लड़की पर।

"अमा रूप!" शेखर ने धीरे से कहा।

"हूँऽऽऽ!"

"पहाड़ की तो एक से बढ़कर एक चढ़ाइयाँ चढ़ी हैं..."

"हाँ"

"कभी प्रेम की भी चढ़ाई चढ़ी कोई?"

"उस उमर में?"

"अरे, कोई तो मिली होगी, जिसे देखकर मन में कुछ-कुछ हुआ होगा कभी?"

"थी तो, मगर उम्र में मुझसे काफ़ी बड़ी।"

"इत्ती...?" शेखर ने लड़की की ओर इशारा किया।

"हाँ!" रूप को मानो रस्सी की सीढ़ी मिल गई, जिससे उम्र के चौबीसवें शिखर से नीचे उतरने लगा वह, "भेड़ें चराने के दौरान ही हमारी मुलाकातें होतीं।"

"इतनी ही हसीन भी थी न?"

"उह! ये क्या है उसके सामने! शैला तो इतनी सुंदर थी कि उसकी गुलामी बजा लाने में ही मैं खुद को धन्य मानता। जबकि वो खुद बैठकर स्वेटर बुना करती, मैं उसकी भेड़ें हाँका करता, उसके लिए बुरूंस के फूल तोड़ लाता, जो उसे बेहद पसंद थे, सेब या आड़ू कहीं मिल गए, तो सबसे पहले उसे लाकर देता।"

"और बदले में वह क्या देती?" शेखर ने ठिठोली की।

"वह...? कभी-कभी देवता का प्रसाद, मक्की की रोटी वगैरह भी। मुझे बाद में मालूम पड़ा कि वह स्वेटर भूप दादा के लिए बुना जा रहा था। फल, फूल और रोटी भी उन्हीं के लिए आती,

वे न आते तो मुझे...! जिस दिन भूप दादा न आते, आखिर तक उसे खुश रखने की मेरी तमाम कोशिशें बेकार चली जातीं।" रूप एक झेंप भरी हँसी हँसकर चुप हो गया।

महीप ने कनखियों से रूप को देखा, फिर घोड़ा पकड़कर चलने लगा।

"तेरी इस लव स्टोरी में तो कोई दम नहीं, कोई और नहीं मिली क्या कभी?" शेखर ने बुरा-सा मुँह बनाया।

"मिली क्यों नहीं, उस दौरान कइयों से साबका पड़ा, कइयों का संग-साथ रहा, अब तो सब ब्याहकर अपने-अपने घर चली गई होंगी, बाल बच्चेदार हो गई होंगी, मगर शैला जैसी एक भी नहीं। एक वही तो थी, जो मुझ पर शासन करती थी। रुकिए, मैं आपको वो जगह दिखाता हूँ, जहाँ...", महीप मुड़कर रूप को देखने लगा, जैसे उसे बातों में रस मिल रहा हो।

अचानक रूप को खटका हुआ, यह कहाँ आ गया वह! यहाँ तो झरने झर रहे हैं, चारागाह का नामोनिशान नहीं। बोला, "ए लड़के, तू हमें कहाँ लिवा जा रहा है?"

"माही", महीप बोला।

"मगर उस रास्ते में पहाड़ों के बगल में एक छोटा सा मैदान हुआ करता था। वहाँ भेड़ें चराने आते थे लोग।"

"पहाड़ के धँस में वो सब कब का दब-ढक गया साब!"

"लो शेखर साहब," पस्त हो गया रूप, "भूप दादा की और मेरी प्रेमिकाएँ, प्यार की निशानियाँ, वो मुकामात सब-के-सब दब-ढक गए भू-स्खलन में! अब तो नए रास्ते हैं और इन्हीं से होकर चलना है।"

"कुछ भी हो, तुम्हारा इलाका है बड़ा खूबसूरत-स्वर्ग जैसा!"

"हाँ, वो क्या कि पांडव इसी रास्ते गए थे स्वर्ग को। इधर का सबसे आखिरी गाँव सुरगी है, सुरगी यानी स्वर्ग। उसके कुछ आगे स्वर्गारोहिणी!"

"जब बरफ़ पड़ती होगी, सारा इलाका बरफ़ से ढक जाता होगा!"

"जभी न लैंड स्लाइड हुआ।"

"वह बात नहीं, मैं तो इस लड़के के रोज़गार के बारे में सोच रहा था। इतनी कच्ची उम्र, उस पर यह घोड़ेवाला धंधा, खतरनाक रास्ते। सोचो, हम जवान होकर भी घोड़े पर जा रहे हैं और यह पंद्रह किलोमीटर पैदल! फिर इसे लौटना भी है पंद्रह किलोमीटर अभी।"

"पेट के लिए क्या-क्या नहीं करना पड़ता है!"

"वो तो हई है, वही मैं सोच रहा था कि बरफ़ के दौरान क्या करता होगा यह।"

"येऽऽऽ! हिलांस की तरह जा छुपता होगा अपनी माँ की गोद में," अपनी बात के समर्थन में उसने लड़के को पुकारा, "ओह महीपऽ!"

"जी साब!"

"तेरे पाँव में दर्द होता होगा, आ जा, कुछ देर तू घोड़े पर बैठ जा, हम पैदल चलते हैं।"

"नहीं साब लौटते बखत तो चढ़ के आनाई है।"

"ये हीरू-वीरू का संग-साथ कब से लिया तूने? किस गाँव का है?"

"इससे यह भी तो पूछो कि हीरू-वीरू के अलावा इसके घर परिवार में और कौन-कौन हैं?" शेखर ने कहा।

"साब, बात मत करो, रास्ता भौत ई खराब है।" कहकर महीप ने उनके सवालों पर विराम लगा दिया। ऊपर से पत्थर गिरे हुए थे और वह आगे-आगे घोड़ों को पुचकारते, निर्देश देते चल रहा था, जो उसके लिए इस समय उनके फालतू सवालों से ज़्यादा महत्त्वपूर्ण था।

आगे एक झरना था और एक उजड़ी पनचक्की। जगह थोड़ी चौड़ी थी। पानी रास्ते को काटकर बह रहा था। घोड़ों ने मुँह लगा दिया, तो उन्हें उतरना पड़ा। महीप चुपचाप पानी पिलाता रहा हीरू-वीरू को। फिर वह खुद पानी पीने लगा।

"वो भी क्या संयोग था शेखर साहब," रूप जैसे अतीत में लौट आया था, "आपके पापा इधर ट्रेनिंग के लिए न आते, न रास्ता भटकते, न मेरी ज़रूरत होती। मैंने भी न वो चुस्ती दिखाई होती पहाड़ पार करने में, न वो खुश होकर अपने साथ मसूरी लिवा जाते। फिर तो हम कपूर साहब के और मसूरी के ही होकर रह गए साहब। ग्यारह साल बीत गए, तब हम इसी लड़के की तरह हुआ करते थे।"

उसके मन में आया कि कपूर साहब की तरह इस लड़के को भी वापसी में साथ लिवाता जाए, तो कैसा रहे, मगर यह लड़का एक ही घुन्ना है, कुछ बोलता ही नहीं।

"साब, इत्ती-इत्ती देर करोगे, तो हम लौटेंगे कैसे?" महीप ने उन्हें चेताया तो वे एक-एक कर फिर सवार हुए घोड़ों पर।

"मगर इस पहाड़ को हम पार कर पाते, तो दो किलोमीटर की दूरी और कम हो जाती।" रूप ने शेखर से कहा। फिर रूप ने जानना चाहा, "अब तो माही मुश्किल से डेढ़ किलोमीटर होना चाहिए।"

"बस, उस डांडी (पहाड़) के पीछे।"

"तुमने बताया नहीं, तुम क्यों भाग आए थे अपने घर से?" लड़के ने जैसे सुना ही नहीं। वह रास्ते में पड़े एक बड़े पत्थर को हटाने लगा था। पत्थर बड़ा था, लड़के की औकात से ज़्यादा, फिर भी वह पिला पड़ा था। उसकी सहायता के लिए अभी वह नीचे उतरने ही वाला था कि लड़के ने पत्थर को नीचे धकेल दिया। कुढ़ गया रूप, "अजीब होते हैं ये पहाड़ी लोग!" रूप ने कहा, फिर मन ही मन झेंप गया, वह भी तो पहाड़ी ही है।

गाँव करीब आता जा रहा था। वर्षों की बंद स्मृतियों के कपाट खुल रहे थे—एक ओर सूपिन, दूसरी ओर जंगल, पीछे हिमांग का ऊँचा पहाड़, नीचे होंगे अपने खेत, अपना घर, अपने लोग, बाबा,

माँ, भूप दादा और लोग। कितनी दूर है केदार काँठा, कितनी दूर है दुर्योधन जी का मंदिर। ऐ मेरे प्यारे वतन, ऐ मेरे बिछड़े चमन...!

बहुत पुराने लोगों में से किसी-किसी ने लाल पलटन के अंग्रेज़ों को देखा था, नयों ने नहीं। सो दो गोरे संभ्रांत अजनबियों के आगमन पर गाँव के कुछ लोग अपने-अपने घरों से निकल आए थे। हालाँकि यह सितंबर का महीना था और दिन के अभी तीन ही बजे थे, मगर यहाँ ठंड काफ़ी थी और लोगों ने ठंड से बचने के लिए 'चुस्ती' या ऊन का 'लावा' पहन रखा था। उनकी आँखों में भय, संशय और कौतूहल थे। रूप की नज़रें इनमें से एक-एक चेहरे को टटोल रही थीं।

लड़का एक सयाने सईस-सा अपनी थकान भूलकर अपने हीरू-वीरू की पीठ, पुट्ठों और टाँगों को थपथपा रहा था। रूप ने सौ का एक नोट निकाला और कुछ सोचकर रख लिया और दस की गड्डी से बारह कड़क नोट निकालकर लड़के को थमाते हुए बोला, "देखो, तुम भी थके हो और तुम्हारे घोड़े भी। फिर बच्चे हो, शाम होनेवाली है, रास्ता खतरनाक है। ऐसा करो, आज रात यहीं रुक जाओ, सुबह चले जाना।"

लड़के ने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की, तो रूप ने उसे पूरे तौर पर आश्वस्त कर देना चाहा, "यहाँ मेरा घर है, तुम्हें कोई तकलीफ़ न होगी।"

लड़के ने फिर भी कोई जवाब न दिया, बल्कि पीठ फेरकर नोटों को गिनने में मशगूल रहा। उसकी इस धंधेबाज़ अदा पर रूप ने मुसकराकर शेखर की ओर देखा, फिर कदम-कदम चलकर एक बूढ़े के पास पहुँचा। बूढ़ा चकमकाया हुआ-सा अपने पोपले मुँह और झुर्रियों के दल-दल में डूबती आँखों पर हथेलियों से सूरज की ओट बनाकर उसे ही देखे जा रहा था, "कने जाणा छावाँ साब (कहाँ जाना है साब)?" रूप ने बताया, "बाबा, यहाँ ग्यारह साल पहले कोई राम सिंह हुआ करते थे...जिनके भूप सिंह और रूप सिंह दो बेटे थे। वो हिमांग पहाड़ के नीचे उनका घर है।"

बूढ़े के चेहरे पर अपरिचय की शिला हिलकर रह गई, मगर टली नही, तो रूप को जितनी भी गढ़वाली याद रह गई थी, उसे जोड़ने-सजाने लगा, "बाबा, यक भूप सिंह, रूप सिंह दुइ भाई होंदा छै?"

"हाँ," इस बार बूढ़े के होंठ हिले, "लेकिन रूप तो भौत पहली भागी गेई छाइ।"

"अगर मी बोलुलूं कि मी वुई रूप सिंह छौं तो (अगर मैं बोलूँ कि मैं वही रूप सिंह हूँ, तो)?"

"तूऽऽऽ! न आऽऽप! मज़ाक करी छूँ साब?"

"तब तो ई भी मजाक ई छै जो आप दादा तिरलोक सिंह जी छूं?" रूप ने हँसते हुए आगे बढ़कर उनके पाँव छुए। बूढ़ा तिरलोक अभी भी इस आत्मीयता को पूरी तरह से आत्मसात् नहीं कर पा रहा था। किसी दूसरे आदमी ने हिंदी में पूछा, "मगर, आप थे कहाँ इतने दिन?"

"पर्वतारोहण संस्थान।"

"वो क्या चीज च?" तिरलोक ने जानना चाहा।

"पहाड़ पर चढ़ना।"

"के वास्ताँ (किसलिए)?"

गड़बड़ा गया रूप उनकी इस जिरह पर, "बाबा, वो कोई छोटा-मोटा काम नईं। सरकार इसी के लिए चार हज़ार तनखा देती है हमें।"

"ल्या सुण ल्या एकइ बात।" तिरलोक बूढ़े ने सबको सुनाकर कहा, "यह कहता है कि यक रूप सिंह छै! चलो मान लिया, लेकिण फिर बोलूँ छै कि सरकार याको सिर्फ म्याल चढ़न कूँ वास्ते चार हजार तणखा देवे छूँ। यक क्या बात हुई? कैसी अहमक है यक सरकार भी!" शेखर की उपस्थिति में अपनी ऐसी किरकिरी होते देख खिसिया गया रूप।

"आप कभी नीचे नहीं गए न?"

"के वास्ताँ नीचे?"

"तभी!" उसने बुरा-सा मुँह बनाया, "खैर, अभी आज्ञा दें। घर जाऊँ, बाद में मिलते हैं।"

"ग्यार...?

"हाँ, घर।"

"ग्यार तो ऊपर उड़ी के चली गेछू बेटा। वोऽऽऽ उदिर।" तिरलोक सीधे हिमांग पहाड़ पर टाँगना चाह रहे थे अपनी नज़र, मगर बादलों के गाढ़े लिहाफ़ के चलते उसकी शिनाख्त ओझल थी।

"और बाबा और माँ?"

"वो तो और भी ऊपर!" तिरलोक की अँगुली सीधे आसमान की ओर उठी हुई थी, "भौत साल पहले ई।" एकाएक जैसे सफ़ेद हो गया रंगीन स्क्रीन। उदास हो गया रूप। शेखर ने उसके कंधे पर सहानुभूति में हाथ रखा।

कुछ देर बाद रूप भर्राए गले से डरते-डरते पूछने लगा, "भूप दादा तो हैं न?"

"भूप अ? रुको, बुलाते हैं। अरे भूप-अ-अ?" बूढ़े तिरलोक की आवाज़ प्रतिध्वनि बनकर लौटती रही। जवाब में कहीं से कोई आवाज़ नहीं आई। रूप ने डरते-डरते शेखर की ओर देखा। उसे संदेह हो रहा था कि क्या वाकई भूप है या बूढ़ा तिरलोक उनकी आत्मा का आवाहन कर रहा है।

"कितने लोग हैं वहाँ?" शेखर ने पूछा।

एक औरत ने बताया, "अरे वो हैं, उसकी घरवाली, एक लड़का है, लेकिन वो तो..." आगे के शब्द रोक लिए थे उसने जबरन।

"लड़का भी है?"

"लो! अरे वोई लिवा आया न घोड़े पर आपको।" किसी लड़के ने बताया।

"वोऽऽऽ!" रूप ने मुड़कर देखा, महीप वहाँ नहीं था। काफ़ी दूर पर एक घोड़े पर बैठा कोई नन्हा सवार दूसरे को हाँकते हुए ढलान में तेज़ी से उतर रहा था। उनकी आँखों में उसका अक्स छोटा होते-होते पहाड़ की ओट में तिरोहित हो गया, तो शेखर ने कंधे उचकाए, "स्ट्रेंज!"

"भूप तो यक किसी से बात ई नी करता। तू ऐसा कर, शाम होणे वाली है। देर न कर। जा चढ़ जा इस म्याल (पहाड़) पर।"

"इस पर...?" वह कुछ परेशान हुआ।

"क्यों? अभी तो तू कै रहा था कि तूणे बड़े-बड़े पहाड़ चढ़े हैं और सरकार यक काम का वास्ताँ तुझे चार हजार तणखा देती है।"

"वो बात नहीं दादा जी, पहाड़ों पर तो हम पत्तरों, खूँटी, रस्सों, कुल्हाड़ी और दूसरी चीज़ों के सहारे चढ़ते हैं। यहाँ तो साथ लाए नहीं।"

"ओऽऽऽ!" तिरलोक की आँखें झुर्रियों के दलदल से ऊपर उछल आईं, "इत्ता सारा इंतजाम होवे, तब तो तू चढ़ पावे म्याल पर!" तिरलोक हँस पड़े, दूसरे बच्चे, बूढ़े भी। औरतों ने हँसते-हँसते मुँह फेर लिए।

"अरे, वो देख, भूप तो इधर ई आ रहा है।" किसी प्रौढ़ की आवाज़ आई, तो उस दिशा में सबकी नज़र मुड़ गई।

पहली नज़र में वह पूरा का पूरा दिखा नहीं। पाँव किसी डिबके की ओट में थे, सिर किसी डाल की ओट में। सिर्फ़ उसके हाथ और बीच के अंश ही दिख रहे थे। पता नहीं, उसका मायावी कद अंदर ज़मीन में कितनी गहराई तक गया था और आसमानों में ऊपर कितनी ऊँचाई तक!

धीरे-धीरे चलकर वह सामने आया, तो वह कतई असाधारण नहीं लगा। हालाँकि उसकी चुस्ती और स्वेटर-मफ़लर में दरमियाने कद की मामूली-सी शख्सियत के बावजूद उसका तिलिस्म अभी भी बरकरार था।

गोरा-चिट्टा चित्तीदार चेहरा, मानो ग्रेनाइट पत्थर को तराशकर गढ़ा गया सख्त लंबोतरा चेहरा, उसकी अजीब-सी स्थितप्रज्ञ आँखें मद्धिम-मद्धिम जलती हुईं, भौंहों पर कटे का निशान, वही है, बिलकुल वही। ग्यारह सालों में और भी ठोस, और भी सख्त हो आए थे भूप दादा।

"दादा!" रूप जा झुका भूप के कदमों पर, "मैं रूप हूँ, तुम्हारा भगेड़ा भाई।"

भाई ने भाई को देखा। जाने क्या-क्या देखा, कहाँ-कहाँ तक देखा, फिर देखते-देखते नज़रों की बरफ़ पिघलने लगी, "कब आया?"

"अभी।"

"अकेले?"

"नहीं, ये मेरे साथ हैं–कपूर साहब, जो मुझे लिवा गए थे, उनके लड़के शेखर साहब आई.ए.एस. की ट्रेनिंग ले रहे हैं मसूरी में।"

शेखर ने हाथ जोड़कर नमस्कार किया। भूप ने कोई उत्तर नहीं दिया। वहाँ तिरलोक दादा जी समेत गाँव के ढेर सारे लोग थे, मगर वह जैसे शिलाओं के बीच खड़े हुए थे, उन्होंने किसी से कोई बात नहीं की, न किसी ने उनसे।

"भुइला (अनुज)! चल ग्यार (घर) चल!" कहकर उन्होंने दोनों के बैग कंधे पर डाल लिए और बिना उनकी सम्मति का इंतज़ार किए, बिना इधर-उधर नज़र डाले वापस मुड़ गए।

शेखर ने धीरे से रूप के कान में कहा, "गोया यह माही हमारा बेस कैंप था और हिमांग हमारा डेस्टीनेशन।" रूप ने होंठों पर अँगुली रखकर उसे चुहल करने से मना किया।

ऊँचे हिमांग की तलहटी में छोटे-से भूखंड पर बसा वह गाँव किसी आदम गाँव-सा लग रहा था। खड्ड, झाड़-झंखाड़, बगल में बहती सूपिन का शोर। बीच-बीच में बादल के टुकड़े आ-जा रहे थे, जिनसे आँख-मिचौली खेलता उनका वजूद फिर से मायावी लगने लगा था। कभी-कभी तो भ्रम होता कि बादल तैर रहे हैं या वे।

चढ़ाई शुरू हो गई थी। प्रायः खड़ी चढ़ाई। पहले तो पेड़ और पत्थरों के सहारे चढ़ते रहे वे, फिर रुक गए। "क्या हुआ? आगे नहीं चढ़ पा रहा है?" भूप ने ऊपर से पूछा, "बस, इत्ता भर पहाड़ीपन बचा रै ग्या ई? है ना!" फिर से नीचे उसके पास आए। उन्होंने गले के मफ़लर की मज़बूती परखी, फिर उसे कमर में बाँधकर दोनों छोरों को दिखाते हुए कहा, "भुला, ले पकड़ इसको।" फिर उन्होंने शेखर की ओर देखा, जो और भी नीचे खड़े हाँफ़ रहा था, "पहले इसे चढ़ा लें, फिर आपको..." शेखर ने हामी भरी।

अब भूप आगे-आगे चढ़ रहे थे, उनकी कमर में बँधे मफ़लर के छोर को पकड़े-पकड़े रूप पीछे-पीछे। बाप रे! बिना किसी आधुनिक उपकरण के, सिर्फ़ पेड़ों-पत्थरों के नाम मात्र के सपोर्ट पर शरीर का संतुलन बनाते हुए चढ़ना। बीच-बीच में रुककर हिदायत भी देते जाते थे, "देख, ए थई मजबूती से पकड़ी के राखी। इन न हवा कि गिर गैल सूपनि मा (देख, इसे मज़बूती से पकड़े रख, ऐसा न हो कि जा गिरे सूपिन में)।"

भूप दादा साँप थे, छिपकली थे, बनमानुष थे या रोबोट थे? वह जिस धैर्य, आत्मविश्वास, ताकत और कुशलता से माँसपेशियों और अंगों का नायाब उपयोग कर रहे थे, वह उसके लिए हैरत की चीज़ थी। फिर अकेले का भार मात्र होता, तो भी एक बात होती। वह तो खुद के साथ-साथ उसे भी खींचे लिए जा रहे थे। बारह वर्ष पहले ठीक इसी तरह ढलान के ऊपर ले आए थे उसे। घंटेभर लगे ऊपर पहुँचने में। उन्होंने वहीं से किसी को आवाज़ दी, शायद उन लोगों के आने की सूचना।

फिर जवाब की प्रतीक्षा किए बगैर उसे हाँफ़ता हुआ छोड़कर शेखर को ले आने के लिए नीचे उतरने लगे। देखते ही देखते हिमांग पर छाए बादलों में अदृश्य हो गए वो।

ऊपर रूप ने देखा कि पहाड़ की पीठ पर कुछ दूर तक ज़मीन प्रायः समतल बनी हुई थी, जिसमें मकई की फसल खड़ी हुई थी। क्षेत्र के चारों ओर सेब और देवदार के पेड़ थे। सेब के पेड़ों में तो फल भी लगे हुए थे। पेड़ ज़्यादा दिनों के नहीं थे, यह देखने से ही लग रहा था। उसने गौर किया, ऐसे ही पेड़ नीचे भी कुछ दूर तक फैलते चले गए थे। पूरे क्षेत्र की परिक्रमा करता हुआ वह आधी दूरी तक पहुँचा होगा कि उसे एक गुफानुमा आश्रम दिखा। उसी के बगल में दो छानी (छप्पर का झोंपड़ा) भी। यही घर है शायद! एक छप्पर के नीचे एक औरत खड़ी थी, नाटी गोरी जवान चुस्त और लाल फ़ुल स्वेटर में। वह उसे हैरानी से घूर रही थी। उसने अनुमान लगाया कि यह भाभी हो सकती है, मगर झिझकवश आगे बढ़ गया। आगे हिमांग के ऊपरवाले अंश से कोई झरना झर रहा था, जो खेतों से गुज़रते हुए सूपिन में गिरता था।

हवा में बरफ़ीली शाम की ठंडक बढ़ गई और देखते-देखते कोहरा इतना घना हो गया कि लगता था, पृथ्वी पर पहाड़ की इस पीठ को छोड़कर बाकी कुछ भी नहीं, कहीं भी नहीं।

शेखर को लेकर आ गए थे भूप। आते ही उन्होंने भाभी-देवर के बीच संवादहीनता की जड़ता को ताड़ लिया और बोले, "रूपऽ! तेरी बाभी (भाभी)।"

रूप ने आगे बढ़कर उस औरत के पाँव छुए। बूँदा-बाँदी शुरू हो गई थी। पति-पत्नी गृहस्थी के सामान को समेटने में लग गए। रूप और शेखर गुफा में बिछे पटरों पर ही लेट गए।

"रूप," शेखर ने पुकारा।

"ऊँऽऽऽ"

"यार, इट वॉज़ ए रेयर एक्सपीरिएंस।"

"हाँ!"

"वो महीप घोड़ेवाला लड़का तेरी इन्हीं भाभी श्री का लड़का है?"

"बताया तो यही गया।"

"उहूँऽऽ, मुझे लगता है, कहीं कोई गड़बड़ है।"

"हूँऽऽऽ," नींद की झील में डूब गया रूप का जवाब। जाने कब तक सोते रहे वे। रात के किसी पहर जगाया था भूप ने, "लो, यकी खा लो, यकी पड़े रहो, भौत ज़ोरों की बारिश है बाहर!" सचमुच, बाहर वर्षा कहर ढा रही थी।

सुबह उठे, तो आसमान साफ़ था। पूरब की दो पहाड़ियों के बीच, धुंध के परदे के पीछे से किसी बच्चे की तरह झाँक रहा था लाल-लाल सूरज। धुंध अरुणाभ हो रही थी। धीरे-धीरे छँटी थी कुछ धुंध! नीचे झाँकने पर माही के छोटे-छोटे घरौंदे अजीब-से लग रहे थे, भूरे पानी के गहरे तल में पड़ी मछलियों, सीप, घोंघे की तरह हलका सा आभास मात्र हो रहा था इन सबका।

"भाई से मिलकर कैसा लगा, रूप?" शेखर ने एकांत में पूछा।

"भाई...? बस, थोड़ी-सी ही धुंध छँटी है अभी।"

"हूँ कहते हैं, लिओनार्दो द विंची ने पहाड़ को देखकर कहा था कि मेरी मोनालिसा यहाँ है, मगर इसे पाने के लिए मुझे ढेरों पत्थर-मिट्टी के मलबे हटाने हैं। तुम्हारा भाई भी इस पहाड़ में है, मोनालिसा नहीं, साक्षात् शिव, मगर उस तक पहुँचने के लिए ढेरों मलबा हटाना पड़ेगा तुम्हें अभी।"

रूप कुछ बोला नहीं, चुपचाप टहलता रहा।

नाश्ते पर पहली बार सब साथ बैठे, आग के गिर्द। भुनी हुई मक्के की बाल और चाय। भाभी सेंक-सेंककर दिए जा रही थी। वे नमक-मिर्च के साथ चबाते जा रहे थे।

"यहाँ इस पहाड़ पर कैसे आना पड़ा दादा?" मलबा हटाने की रूप की एक अदद कोशिश।

"यहाँ...?" भूप ने मक्के से हाथ को गरम करते हुए जैसे पीछे दूर तक देखा, "आज इतणे वर्षों बाद यही पूछणे के लिए आया है?"

"मुझे और शर्मिंदा न करें।"

"तो सुण भुइला, तूने सिर पर पहाड़ टूटने की कहावत तो भौत सुणी होगी, सुणने में भौत भारी नहीं लगती, लेकिन इसकी सच्चाई तो वोई जाणे है, जिस पर सचमुच का पहाड़ टूटा हो।" भाभी और भुने हुए भुट्टे दे रही थीं। उन्होंने मना कर दिया, "तेरे जाणे के बाद अगले साल भौत बरफ गिरी। ये हिमांग पहाड़ उसका बोझ न उठा सका, धसक गया और अपने तीस नाली खेत, मकान, माँ, बाबा, सब दब गए मलबे में। मैं ही किसी तरह बच गया, छानी पर था, इसलिए वहीं से तबाही देखी थी मैंणे लाचार, असहाय। तू होता, तो पहाड़ का मलबा क्या था, पहाड़ तक हटा लेते दोनों भाई, खेत भी खींचकर निकाल लेते, माँ-बाबा को भी, लेकिन नहीं हो सका, वही पहाड़ कबर बन गया सबका।" भूप थोड़ी देर के लिए चुप हो गए।

"तू तो पैले ही भाग चुका था मुझे अकेला छोड़कर। फिर मैं भौत भटका, भौत छटपटाया, लेकिन कहीं सहारा न मिला। सहारा देता भी कौण? सबी अपणे-अपणे से-ई तबाह। दस-दस किलोमीटर तक जगह-जगह धँसाव हुए थे। रास्ते बदल गए, नदियाँ बदल गईं। इतनी बड़ी तबाही हो चुकी थी और मैं खिसियाई आँखों से इस हिमांग को देखा करता, मौत की तरह फैला हुआ म्याल!"

भाभी चाय दे गई थीं। दूध के अभाव में लाल चाय। भूप ने पहले गिलास की चाय में भाप से अपनी पनियाई आँखों को सेंका, फिर गिलास को दोनों हाथों में दबा लिया। पता नहीं, किस आत्मीय ऊष्मा की तलाश थी उन्हें। वे हैरान हो उनकी इस विचित्र लीला को देख रहे थे।

"तुझे बचपण में बाबा की सुनाई गई कहानी याद है?" वे रूप की ओर मुखातिब हुए, तो उनकी आँखें कुछ ज्यादा ही चटक हो आई थीं, "वो एक नन्ही चिड़ियावाली, जिसे गीध ने कहा था, 'मैं तुझे खा जाऊँगा' नहीं? खैर, मैं याद दिलाता हूँ। गीध के ऐसा कहने पर चिड़िया डर गई। पूछा,

'क्यों?', गीध बोला, 'इसलिए कि तू मुझसे ऊँचा नहीं उड़ सकती।' यह अजीब जबरदस्ती का तर्क था। नन्ही चिड़िया ने धीरज धरकर पूछा, 'और अगर मैं तुझसे ऊँचा उड़कर दिखा दूँ, तो?' गीध उसके बचकाणेपन पर हँसा, 'तो नहीं खाऊँगा'। फिर तो दोणों में ठण गया मुकाबला। गीध के सामने भला उस नन्ही चिड़िया की क्या बिसात! लंबे-लंबे डैने फहराए और उड़ गया ऊपर, ऊपर और-और ऊपर। चिड़िया डर गई। फिर भी उसने धीरज न छोड़ा। ऐसे भी मरणा है, वैसे भी, तो क्यों न मौत से दो-दो हाथ करके-ई मरूँ। कम-से-कम मरणे का मलाल तो नहीं रहेगा। फिर तो पूरी ताकत लगा दी उसने उड़ने में, लगा कि पराण ही निकल जावेंगे। जाण पे खेल गई चिड़िया और सारी ताकत लगाकर उड़कर जा बैठी गीध की पीठ पर। गीध अपणी बेहिसाब ताकत के गुरूर में उड़ता रहा, आकाश से भी ऊँचा, लेकिन चिड़िया को अब कोई डर न था। वह हर हाल में उससे ऊँचाई पर थी, मौत की पीठ पर ही जा बैठी थी जो।"

कहानी खत्म कर अपने सामने के मंज़र को देखने लगे भूप। उन्होंने बीड़ी सुलगा ली। दो-एक कश खींचे, फिर बोले, "तो भुइला, इसी तरह मैं भी आ बैठा मौत की इस पीठ पर, उसी की, जिसने मेरा सब कुछ निगल लिया था। धीरे-धीरे मलबा हटाता रहा यहाँ का। थोड़ी-बहुत खेती शुरू करी। अकेला-अकेला लगा, तो एक औरत ले आया नीचे से।"

"कौन, शैला...?" रूप चौकन्ना हो उठा सहसा।

"हाँ, अभी तक तुझे याद है?" इस बार भूप के चौंकने की बारी थी। एक क्षण को वह तराशा हुआ चित्तीदार चेहरा स्निग्ध होता-सा लगा। फिर उस पर एक नामालूम-सी धुंध छा गई। "शैला के आने से खेती फैल गई। बरफ जमी न रहे, सो हमने खेतों को ढलवाँ बणाया, मगर एक मुसीबत, पाणी कहाँ से आए! एक दिन पाणी की खोज में हम चढ़ गए इस हिमांग के साबुत ऊँचे हिस्से पर। वहाँ हमने देखा कि एक झरणा यूँ ही उस तरफ सूपिन में गिर रहा था। उसे मोड़ लेने से पाणी की समस्या हल हो सकती थी, मगर बीच में ऊँचा था याणी के पहाड़ काटणा था। हमने क्वार के दिन चुने, जब रातों को बरफ जमने लगती थी, दिन को पिघलने लगती थी, मगर थोड़ी-थोड़ी। याणी इतना भी नहीं कि धार तेज हो, इतना भी नहीं की बरफ जमकर सख्त हो जाए। बड़ी मेहनत की हम दोणों ने, मगर झरने को मोड़कर लाने में सफल हो ही गए आखिर।"

"जाड़े में तो जम जाता होगा, फिर बरफ़ से ढक जाता होगा यह सब?" शेखर ने पूछा।

"अभी ई जम गया जी।" भूप ने कहा, "लेकिण गरमी पाएगा, तो पिघल जाएगा।"

"ये पेड़ लगा रखे हैं न। काफी लकड़ी जमा कर लेते हैं। चौबीसों घंटे आग जलती रहती है। बरफ से आग को भिड़ा देते हैं।"

"मगर भाभी गई कहाँ, मेरा मतलब शैला भाभी..."

"वो ई तो बता रहा था कि तेरी बाभी के आणे से खेती का काम कैसे बढ़ता गया। काम हम दोनों के बूते का न था। फिर उसको बच्चा भी होनेवाला था, तो हम ले आए दूसरी औरत...ए तेरी

दूसरी बाभी। शैला से एक बेटा हुआ महीप। फिर एक दिन, महीप अभी नौ साल का ई था कि उसकी माँ को जाणे क्या सूझा कि एक दिन हयांई से कूद गई सूपिण माँ।"

स्तब्ध रह गए रूप और शेखर। सिर्फ़ झरने के गिरने के शोर को छोड़कर कोई आवाज़ नहीं थी कहीं। एक गहरी साँस लेकर बोले भूप, "तब से...बेटा जो नीचे उतरा, तो फिर ऊपर नहीं आया, मैंने लाख मणाया, फिर भी...कल भी उसे आया देखकर ई नीचे उतरा था। उसके पीछे-पीछे दूर तक गया, मगर। उसने सुणकर भी नहीं सुणा, देखकर भी नहीं देखा, लौट गया घोड़ी को भगाते हुए। मुझी को गुनाहगार समझता है अपनी माँ की मौत के लिए।"

"चाह!" भूप की दूसरी पत्नी ने शायद विषयांतर करना चाहा।

"अरे, रहणे दे। ये साहब लोग हुए न, काली चाह नहीं पसंद करते।"

"आप एक भेड़ या बकरी तो रख ही सकते थे, उन्हें चढ़ने-चढ़ाने में मुश्किल भी नहीं आती, दूध भी मिल जाता।"

"पाली थी न।"

"दिख तो नहीं रही।"

धुंध काफ़ी कुछ छँट चुकी थी...।

अब समझ में आया कि भूप दादा ने कल क्यों बात नहीं की माहीवालों से। रात की बारिश से भीगी सलेटी मिट्टी पर सुबह की आलोक-छाया में चलते हुए नीचे पसरी घाटी को दूर-दूर तक देख रहे थे वे। उनके पीछे हिमांग का बाकी साबुत पहाड़ था, जिससे नीचे उतरता झरना हिमायित होकर चाँदी की राह-सा चमक रहा था। इतनी ऊँचाई पर और इतनी ठंड में उसका जम जाना लाज़िमी था। वे हिम के पिघलने का इंतज़ार कर रहे थे और रूप और शेखर उनके अंदर के हिम के पिघलने का इंतज़ार। आखिर दोनों ही पिघले।

"तू गया। तेरे पीछे माँ गई। बाबा गए। फिर शैला गई। सबसे आखिर में महीप भी चला गया हमें छोड़कर।" वे रुक-रुककर बोलते हैं, "तू कहेगा, चढ़ सिर्फ मैं रहा था, बाकी उतर रहे थे; मैं कहता नहीं, अपणे-अपणे हिस्से की चढ़ाई तो सभी चढ़ रहे थे। चढ़ने का सबका अपणा-अपणा तरीका है।"

थोड़ी देर तक हिम के पिघलने को वे यूँ ही देखते रहे। फिर फावड़ा उठाकर किनारे के कटाव को ठीक करने चल पड़े। इस समय वे अकेले थे। उनका यह रूप उन दोनों में दहशत भी भर रहा था, सम्मोहित भी कर रहा था।

"उफ़! कितने अकेले लग रहे हैं भूप दादा इस वक्त!" रूप ने धीरे से कहा।

"ऊँचाइयाँ तनहा भी तो करती हैं," शेखर ने कहा।

कटाव की मरम्मत कर आग के पास फिर लौट आए थे भूप।

"भूप सिंह, एक बात पूछूँ?" शेखर ने उन्हें देखते हुए कहा।

"पूछो।"

"आप पहाड़ हैं या पहाड़ पर चढ़नेवाले?"

"हम...? आपको क्या लगता है?"

"दोनों ही।"

हँस पड़े भूप। शायद पहली बार! बोले, "हम कहाँ के पहाड़ हुए भुला, हम तो चढ़नेवाले ई हुए।"

"दादा!" रूप का गला भर आया, "बहोत दुख झेले आपने, बहोऽऽत। दुखों का पहाड़ लेकर चढ़ते रहे पहाड़ पर। अब बस करो। मैं तुम्हारा छोटा भाई तुम्हें अपने साथ लिवा जाना चाहता हूँ। मुझे सरकार की ओर से पक्का क्वार्टर मिला हुआ है। जितनी तनख्वाह मिलती है, उसमें आराम से रह लेंगे हम सभी।"

भूप गंभीर हो गए। न 'हाँ' कहा, न 'ना'।

"एक बार चलकर देख तो आइए कि आपका भुइला कैसे रहता है।"

भूप फिर भी निर्विकार बने रहे, तो शेखर ने कहा, "भूप भैया, मेरे पापा कहा करते थे कि क्लाइंबर, माने चढ़नेवाले को अपनी सारी ताकत एक ही चढ़ाई में खत्म नहीं कर देनी चाहिए, कुछ ताकत बचा के रखनी चाहिए, आनेवाली चढ़ाइयों के लिए भी..."

"आई.एस. साहब, वो आपके बाबा का तरीका होगा, शौकिया चढ़नेवालों का तरीका। मेरे बाबा का तरीका तो वोई है–गीध और नन्हीं चिड़ियावाला, जहाँ जिंदगी और मौत में जंग छिड़ी हो, वहाँ...", बैलों की डकार में अधूरा रह गया वाक्य।

"ओह, इन बंदों को तो मैं भूल ई गया आज," भूप को जैसे उनकी सुधि अब आई हो, फिर ज़ोर से बोले, "सुण लिया, सुण लिया।"

रूप और शेखर ने एक-दूसरे की ओर हैरान होनेवाली नज़रों से देखा, "तो बैल भी हैं यहाँ! मगर ये आए कैसे?"

बैलों को बाहर धूप में निकालकर बाँधा भूप ने। छोटे नाटे, पर पुष्ट बैल। उनकी पत्नी ने भोजन बनाना छोड़कर हाथ में घास लाकर डाल दिया उनके सामने।

"भूप भैया, ये बैल कैसे आए यहाँ?" शेखर ने पूछा।

"कैसे आए...? आप ई बताओ जी। सुना, बड़ा 'मैंड' (माइंड) रखते हैं आई.एस. वाले।"

शेखर कुछ इस कदर पराभूत था कि भकुआ गया।

"अजी, कंधे पर ढो के ले आए इन्हें, और कैसे!" भूप ने कहा।

"कंधे पर?..इन्हें?"

"क्यों? मैं अपनी दो औरतों को कंधे पर लाद के ला सकता हूँ, आप दोणों को ला सकता हूँ, इन्हें नी ला सकता? अजी देखो, इत्ते बड़े बैल तो चढ़ नी सकते न! सो नीचे से एक छोटा बछड़ा ले आए पहले, फिर दूसरा। फिर वे हयांई पलकर बैल बने।"

"लेकिन ये नीचे कैसे उतरेंगे?"

भूप ने कोई जवाब न दिया। हँसुए से मकई की डंठलों को काटते रहे।

"ये पहाड़ कभी भी धँस सकता है।"

"मालूम है।" उनका यह छोटा सा वाक्य बेहद ठंडा था। बहुत देर तक मंडराता रहा उसका आतंक।

"यह तो सरासर खुदकशी है।"

"तुम कैते हो, खुदकशी है, मैं कैता बचने का मुकाम।"

"दादा, इन्हें देखकर आपका अकेलापन और गहरा गया हमारे सामने। आप समझते क्यों नहीं कि आपने औरों से खुद को काट लिया है।" रूप की आवाज़ भर्रा रही थी।

"मैंने...? ना! पिछले साल गरमियों में नीचे आग लगी। इसी झरने को मोड़कर बुझाई थी हमने आग। अभी कल ही नीचे नहीं गया था?"

"मगर आपने किसी से बात तो नहीं की न?"

"नी की। दु:ख था, लेकिन देवता जानते हैं, जो कभी उनका बुरा सोचा हो मण में। ह्याँ, जहाँ हूँ, बुरा सोचूँगा भी कैसे? मुझे तो सबी पर दया आती है ह्याँ से नीचे देखणे पर।"

"मगर यहाँ आप अकेले हैं।"

"कौण कैता है, अकेला हूँ? ह्याँ माँ है, बाबा हैं, शैला है—सोये पड़े हैं सब। ह्याँ महीप है, बल्द हैं, मेरी घरवाली है, मौत के मुँह से निकाले गए खेत हैं, पेड़ हैं, झरणा है। इन पहाड़ों में मेरे पुरखों, मेरे प्यारों की आत्मा भटकती रहती है। मैं उनसे बात करता हूँ।"

"दादा! ये सब देख-देखकर, सुन-सुनकर मेरा कलेजा मुँह को आ रहा है। अभी से भी बची-खुची ज़िंदगी के साथ इंसाफ़ किया जा सकता है।"

भूप ने अपनी भीगी पलकें ऊपर उठाईं, तो वे अंदर जल रही थीं, "भौत इंसाफ किया तुम सबी ने मेरे साथ-भौत। अब माफ करो भुइला। मेरी खुद्दारी को बखस दो। अब तो जिंदा रहणे तक न ई बल्द उतर सकदिन, न हम!"

प्रश्न-अभ्यास

1. यूँ तो प्रायः लोग घर छोड़कर कहीं न कहीं जाते हैं, परदेश जाते हैं किंतु घर लौटते समय रूप सिंह को एक अजीब किस्म की लाज, अपनत्व और झिझक क्यों घेरने लगी?
2. पत्थर की जाति से लेखक का क्या आशय है? उसके विभिन्न प्रकारों के बारे में लिखिए।
3. महीप अपने विषय में बात पूछे जाने पर उसे टाल क्यों देता था?
4. बूढ़े तिरलोक सिंह को पहाड़ पर चढ़ना जैसी नौकरी की बात सुनकर अजीब क्यों लगा?
5. रूप सिंह पहाड़ पर चढ़ना सीखने के बावजूद भूप सिंह के सामने बौना क्यों पड़ गया था?
6. शैला और भूप ने मिलकर किस तरह पहाड़ पर अपनी मेहनत से नयी ज़िंदगी की कहानी लिखी?
7. सैलानी (शेखर और रूप सिंह) घोड़े पर चलते हुए उस लड़के के रोज़गार के बारे में सोच रहे थे जिसने उनको घोड़े पर सवार कर रखा था और स्वयं पैदल चल रहा था। क्या आप भी बाल मज़दूरों के बारे में सोचते हैं?
8. पहाड़ों की चढ़ाई में भूप दादा का कोई जवाब नहीं! उनके चरित्र की विशेषताएँ बताइए।
9. इस कहानी को पढ़कर आपके मन में पहाड़ों पर स्त्री की स्थिति की क्या छवि बनती है? उस पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।

योग्यता-विस्तार

1. 'पहाड़ों में जीवन अत्यंत कठिन होता है।' पाठ के आधार पर उक्त विषय पर एक निबंध लिखिए।
2. पर्वतारोहण की प्रासंगिकता पर प्रकाश डालिए।
3. पर्वतारोहण पर्वतीय प्रदेशों की दिनचर्या है, वही दिनचर्या आज जीविका का माध्यम बन गई है। उसके गुण-दोष का विवेचन कीजिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

खतो-किताबत	–	पत्र-व्यवहार
मुकम्मिल	–	स्थायी
खासमखास	–	अतिविशिष्ट, अंतरंग
तौहीन	–	बेइज़्ज़ती
ज़र्द	–	पीला पड़ना

इंपोर्टेड	–	आयातित
दरियाफ़्त	–	जानकारी प्राप्त करना, पता लगाना
ह्याँ	–	यहाँ
घाट बटी	–	पहाड़ के पार जाने का रास्ता
चंदोव	–	शामियाना, चादर
दरकना	–	फटना
पगुराना	–	जुगाली करना
पैबंद	–	थेगली
सूपिन	–	नदी का नाम
अस्फुट	–	अस्पष्ट
कुहेड़ी	–	कुहरा
घसेरी	–	घासवाली
डांडियाँ	–	पहाड़ियाँ
हिलांस	–	एक पक्षी का नाम
ना बास	–	न बसना
गफ़लत	–	गलतफ़हमी, असावधानी
अनुतप्त	–	पछतावे से भरी
रॉक पिटन	–	चट्टान में गड्ढा करना
ड्रिल	–	खोदना
लैंड स्लाइड	–	भू-स्खलन
संभ्रांत	–	कुलीन, खानदानी, रईस
मशगूल	–	व्यस्त, लगा हुआ
शिनाख्त	–	पहचान
शख्सियत	–	व्यक्तित्व
तिलस्म	–	जादू
वजूद	–	अस्तित्व
हिलकोरे	–	स्वर लहरी